

अध्याय-२७



भागवत और विष्णुसहस्रनाम प्रदान कर
अनुगृहीत करना, गीता रहस्य,
दादासाहेब खापर्डे।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्री साईबाबा ने किस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों को करस्पर्श से पवित्र कर अपने भक्तों को पारायण के लिये देकर अनुगृहीत किया तथा और भी अन्य कई घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

प्रारम्भ

जन-साधारण का ऐसा विश्वास है कि समुद्र में स्नान कर लेने से ही समस्त तीर्थों तथा पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेने मात्र से तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, और महेश) और परब्रह्म को नमन करने का श्रेय सहज ही प्राप्त हो जाता है। श्री सच्चिदानंद साईमहाराज की जय हो! वे तो भक्तों के लिये कल्पतरु, दया के सागर और आत्मानुभूति देने वाले हैं। हे साई! तुम अपनी कथाओं के श्रवण में मेरी श्रद्धा जागृत कर दो। घनघोर वर्षा ऋतु में जिस प्रकार चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र की केवल एक बूँद का पान कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अपनी कथाओं के सारसिन्धु से प्रगटित एक जल कण का सहस्रांश दे दो, जिससे पाठकों और श्रोताओं के हृदय तृप्त होकर प्रसन्नता से भरपूर हो जाएँ। शरीर से स्वेद प्रवाहित होने लगे, आँसुओं से नेत्र परिपूर्ण हो जाएँ, प्राण स्थिरता पाकर चित्त एकाग्र हो जाए और पल-पल पर रोमांच हो उठे, ऐसा सात्त्विक भाव सभी में जागृत कर दो। पारस्परिक वैमनस्य तथा वर्ग-अपवर्ग का भेद-भाव नष्ट कर दो, जिससे वे तुम्हारी भक्ति में सिसकें, बिलखें और कम्पित हो उठें। यदि ये सब भाव उत्पन्न होने लगें तो इसे गुरु-कृपा के लक्षण जानो। इन भावों को

अन्तःकरण में उदित देखकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें आत्मानुभूति की ओर अग्रसर करेंगे। माया से मुक्त होने का एकमात्र सहज उपाय अनन्य भाव से केवल श्री साईबाबा की शरण जाना ही है। वेद-वेदान्त भी मायारूपी सागर से पार नहीं उतार सकते। यह कार्य तो केवल सद्गुरु द्वारा ही संभव है। समस्त प्राणियों और भूतों में ईश्वर-दर्शन करने के योग्य बनाने की क्षमता केवल उन्हीं में है।

पवित्र ग्रन्थों का प्रदान

गत अध्याय में बाबा की उपदेश-शैली की नवीनता ज्ञात हो चुकी है। इस अध्याय में उसके केवल एक उदाहरण का ही वर्णन करेंगे। भक्तों को जिस ग्रन्थविशेष का पारायण करना होता था, उसे वे बाबा के करकमलों में भेंट कर देते थे और यदि बाबा उसे अपने करकमलों से स्पर्श कर लौटा देते तो वे उसे स्वीकार कर लेते थे। उनकी ऐसी भावना हो जाती थी कि ऐसे ग्रन्थ का यदि नित्य पठन किया जाएगा तो बाबा सदैव उनके साथ ही होंगे। एक बार काका महाजनी श्री एकनाथी भागवत लेकर शिरडी आए। शामा ने यह ग्रन्थ अध्ययन के लिये उनसे ले लिया और उसे लिए हुए वे मस्जिद में पहुँचे। तब बाबा ने वह ग्रन्थ शामा से ले लिया और उन्होंने उसे स्पर्श कर कुछ विशेष पृष्ठों को देखकर उसे सँभाल कर रखने की आज्ञा देकर वापस लौटा दिया। शामा ने उन्हें बताया कि यह ग्रन्थ तो काकासाहेब का है और उन्हें इसे वापस लौटाना है। तब बाबा कहने लगे कि, “नहीं, नहीं, यह ग्रन्थ तो मैं तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इसे सावधानी से अपने पास रखो। यह तुम्हें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।” कुछ दिनों के पश्चात् काका महाजनी पुनः श्री एकनाथी भागवत की दूसरी प्रति लेकर आए और बाबा के करकमलों में भेंट कर दी, जिसे बाबा ने प्रसाद-स्वरूप लौटाकर उन्हें भी उसे सावधानी से सँभाल कर रखने की आज्ञा दी। साथ ही बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया कि यह तुम्हें उत्तम स्थिति में पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा। काका ने उन्हें प्रणाम कर उसे स्वीकार कर लिया।

शामा और विष्णुसहस्रनाम

शामा बाबा के अंतरंग भक्त थे। इस कारण बाबा उन्हें एक विचित्र ढंग से 'विष्णुसहस्रनाम' प्रसादरूप में देने की कृपा करना चाहते थे। तभी एक रामदासी आकर कुछ दिन शिरडी में ठहरा। वह नित्य नियमानुसार प्रातःकाल उठता और हाथ मुँह धोने के पश्चात् स्नान कर भगुवा वस्त्र धारण करता तथा शरीर पर भस्म लगाकर विष्णुसहस्रनाम का जाप किया करता था और बहुधा इन्हीं ग्रन्थों को ही पढ़ा करता था। कुछ दिनों के पश्चात् बाबा ने शामा को भी 'विष्णुसहस्रनाम' से परिचित कराने का विचार कर रामदासी को अपने समीप बुलाकर उससे कहा कि मेरे उदर में अत्यन्त पीड़ा हो रही है और जब तक मैं सोनामुखी का सेवन न करूँगा, तब तक मेरा कष्ट दूर न होगा। तब रामदासी ने अपना पाठ स्थगित कर दिया और वह औषधि लाने बाजार चला गया। उसी समय बाबा अपने आसन से उठे और जहाँ वह पाठ किया करता था, वहाँ जाकर उन्होंने विष्णुसहस्रनाम की वह पुस्तिका उठाई और पुनः अपने आसन पर विराजमान हो कर शामा से कहने लगे कि, "यह पुस्तक अमूल्य और मनोवांछित फल देने वाली है। इसलिए मैं तुम्हें इसे प्रदान कर रहा हूँ, ताकि तुम इसका नित्य पठन करो। एक बार जब मैं बहुत रुग्ण था तो मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरे प्राणपखेरू उड़ना ही चाहते थे कि उसी समय मैंने इस सद्ग्रन्थ को अपने हृदय पर रख लिया। कैसा सुख पहुँचाया इसने? उस समय मुझे ऐसा ही भान हुआ मानो अल्लाह ने स्वयं ही पृथ्वी पर आकर मेरी रक्षा की। इस कारण यह ग्रन्थ मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे थोड़ा धीरे-धीरे, कम से कम एक श्लोक प्रतिदिन अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हारा बहुत भला होगा।" तब शामा कहने लगे कि, "मुझे इस ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसका स्वामी रामदासी एक पागल, हठी और अतिक्रोधी व्यक्ति है, जो व्यर्थ ही अभी आकर लड़ने को तैयार हो जाएगा। अल्पशिक्षित होने के नाते, मैं संस्कृत भाषा में लिखित इस ग्रन्थ को पढ़ने में भी असमर्थ हूँ।" शामा की धारणा थी कि बाबा मेरे और रामदासी के बीच मनमुटाव करवाना चाहते हैं, इसलिये ही उन्होंने यह नाटक रचा है। बाबा का विचार उनके प्रति

क्या था, यह उनकी समझ में न आया। बाबा 'येन केन प्रकारेण' विष्णुसहस्रनाम उसके कंठ में उतार देना चाहते थे। वे तो अपने एक अल्पशिक्षित अंतरंग भक्त को सांसारिक दुःखों से मुक्त कर देना चाहते थे। ईश्वर-नाम के जाप का महत्व तो सभी को विदित ही है, जो हमें पापों से बचाकर कुवृत्तियों से हमारी रक्षा कर, जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से छुड़ा देता है। यह आत्मशुद्धि के लिये एक उत्तम साधन है, जिसमें न किसी सामग्री की आवश्यकता है और न किसी नियम के बन्धन की। इससे सुगम और प्रभावकारी साधन अन्य कोई नहीं। बाबा की इच्छा तो शामा से यह साधना कराने की थी, परन्तु शामा ऐसा न चाहते थे, इसीलिये बाबा ने उनपर दबाव डाला। ऐसा बहुधा सुनने में आया है कि बहुत पहले श्री एकनाथ महाराज ने भी अपने एक पड़ोसी ब्राह्मण से विष्णुसहस्रनाम का जाप करने के लिये आग्रह कर उसकी रक्षा की थी। विष्णुसहस्रनाम का जाप चित्तशुद्धि के लिये एक श्रेष्ठ तथा सरल मार्ग है। इसीलिये बाबा ने शामा को अनुरोधपूर्वक इसके जाप में प्रवृत्त किया। रामदासी बाजार से तुरन्त सोनामुखी लेकर लौट आया। अण्णा चिंचणीकर, जो वहीं उपस्थित थे, प्रायः पूरे 'नारद मुनि' ही थे और उन्होंने उक्त घटना का सम्पूर्ण वृत्तांत रामदासी को बता दिया।

रामदासी क्रोधावेश में आकर शामा की ओर लपका और कहने लगा कि, "यह तुम्हारा ही कार्य है, जो तुमने बाबा के द्वारा मुझे उदर पीड़ा के बहाने औषधि लेने को भेजा। यदि तुमने पुस्तक न लौटाई तो मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।" शामा ने उसे शान्तिपूर्वक समझाया, परन्तु उनका कहना व्यर्थ ही हुआ। तब बाबा प्रेमपूर्वक बोले कि, "अरे रामदासी, यह क्या बात है? क्यों उपद्रव कर रहे हो? क्या शामा अपना बालक नहीं है? तुम उसे व्यर्थ ही क्यों गाली दे रहे हो? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी प्रकृति ही उपद्रवी है। क्या तुम नम्र और मृदुल वाणी नहीं बोल सकते? तुम नित्य प्रति इन पवित्र ग्रन्थों का पाठ किया करते हो और फिर भी तुम्हारा चित्त अशुद्ध ही है? जब तुम्हारी इच्छाएँ ही तुम्हारे वश में नहीं हैं तो तुम रामदासी कैसे? तुम्हें तो समस्त वस्तुओं से अनासक्त (वैराग्य) होना चाहिए।

कैसी विचित्र बात है कि तुम्हें इस पुस्तक पर इतना अधिक मोह है? सच्चे रामदासी को तो ममता त्याग कर समदर्शी होना चाहिए। तुम तो अभी बालक शामा से केवल एक छोटी सी पुस्तक के लिये झगड़ा कर रहे थे। जाओ, अपने आसन पर बैठो। पैसों से पुस्तकें तो अनेक प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु मनुष्य नहीं। उत्तम विचारक बनकर विवेकशील होओ। पुस्तक का मूल्य ही क्या है और उससे शामा को क्या प्रयोजन? मैंने स्वयं उठाकर वह पुस्तक उसे दी थी, यह सोचकर कि तुम्हें तो यह पुस्तक पूर्णतः कंठस्थ है। शामा को इसके पठन से कुछ लाभ पहुँचे, इसलिये मैंने उसे दे दी।” बाबा के ये शब्द कितने मृदु और मार्मिक तथा अमृततुल्य हैं! इनका प्रभाव रामदासी पर पड़ा। वह चुप हो गया तथा फिर शामा से बोला कि मैं इसके बदले में पंचरत्नी गीता की एक प्रति स्वीकार कर लूँगा। तब शामा भी प्रसन्न होकर कहने लगे कि “एक ही क्यों, मैं तो तुम्हें उसके बदले में १० प्रतियाँ देने को तैयार हूँ।”

इस प्रकार यह विवाद तो शान्त हो गया, परन्तु अब प्रश्न यह आया कि रामदासी ने पंचरत्नी गीता के लिये - एक ऐसी पुस्तक जिसका उसे कभी ध्यान भी न आया था, इतना आग्रह क्यों किया और जो मस्जिद में हर दिन धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करता हो, वह बाबा के समक्ष ही इतना उत्पात करने पर क्यों उतारू हो गया? हम नहीं जानते कि इस दोष का निराकरण कैसे करें और किसे दोषी ठहरावें? हम तो केवल इतना ही जान सके हैं कि यदि इस प्रणाली का अनुसरण न किया गया होता तो विषय का महत्व और ईश्वर नाम की महिमा तथा शामा को विष्णुसहस्रनाम के पठन का शुभ अवसर ही प्राप्त न होता। इससे यही प्रतीत होता है कि बाबा के उपदेश की शैली और उसकी प्रक्रिया अद्वितीय है। शामा ने धीरे-धीरे इस ग्रन्थ का इतना अध्ययन कर लिया और उन्हें इस विषय का इतना ज्ञान हो गया कि वह श्रीमान् बूटीसाहेब के दामाद-प्रोफेसर जी.जी. नारके, एम.ए. (इंजीनियरिंग कालेज, पूना) को भी उसका यथार्थ अर्थ समझाने में पूर्ण सफल हुए।

गीता रहस्य

ब्रह्मविद्या (अध्यात्म) का जो भक्त अध्ययन करते, उन्हें बाबा सदैव प्रोत्साहित करते थे। इसका एक उदाहरण है कि एक समय बापूसाहेब जोग का एक पार्सल आया, जिसमें श्री लोकमान्य तिलक कृत गीता-भाष्य की एक प्रति थी, जिसे काँख में दबाये हुये वे मस्जिद में आए। जब वे चरण-वन्दना के लिये झुके तो वह पार्सल बाबा के श्री-चरणों पर गिर पड़ा। तब बाबा उनसे पूछने लगे कि इसमें क्या है? श्री जोग ने तत्काल ही पार्सल से वह पुस्तक निकालकर बाबा के कर-कमलों में रख दी। बाबा ने थोड़ी देर उसके कुछ पृष्ठ देखकर जेब से एक रुपया निकाला और उसे पुस्तक पर रखकर जोग को लौटा दिया और कहने लगे कि, “इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।”

श्रीमान् और श्रीमती खापर्डे

एक बार श्री दादासाहेब खापर्डे सकुटुम्ब शिरडी आए और कुछ मास वहीं ठहरे। उनके ठहरने के नित्य कार्यक्रम का वर्णन श्री साईलीला पत्रिका के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ है। दादा कोई सामान्य व्यक्ति न थे। वे एक धनाढ्य और अमरावती (बरार) के सुप्रसिद्ध वकील तथा केन्द्रीय धारासभा (दिल्ली) के सदस्य थे। वे विद्वान् और प्रवीण वक्ता भी थे। इतने गुणवान् होते हुए भी उन्हें बाबा के समक्ष मुँह खोलने का साहस न होता था। अधिकांश भक्तगण तो बाबा से हर समय अपनी शंका का समाधान कर लिया करते थे। केवल तीन व्यक्ति खापर्डे, नूलकर और बूटी ही ऐसे थे, जो सदैव मौन धारण किये रहते तथा अति विनम्र और उत्तम प्रकृति के व्यक्ति थे। दादासाहेब, विद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित पंचदशी नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ, जिसमें अद्वैतवेदान्त का दर्शन है, उसका विवरण दूसरों को तो समझाया करते थे, परन्तु जब वे बाबा के समीप मस्जिद में आए तो वे एक शब्द का भी उच्चारण न कर सके। यथार्थ में कोई व्यक्ति, चाहे वह जितना वेदवेदान्तों में पारंगत क्यों न हो, परन्तु ब्रह्मपद को पहुँचे हुए व्यक्ति के समक्ष उसका शुष्क ज्ञान प्रकाश नहीं दे सकता। दादा

चार मास तथा उनकी पत्नी सात मास वहाँ ठहरें। वे दोनों अपने शिरडी-प्रवास से अत्यन्त प्रसन्न थे। श्रीमती खापर्डे श्रद्धालु तथा पूर्ण भक्त थीं, इसलिये उनका साईं चरणों में अत्यन्त प्रेम था। प्रतिदिन दोपहर को वे स्वयं नैवेद्य लेकर मस्जिद को जातीं और जब बाबा उसे ग्रहण कर लेते, तभी वे लौटकर अपना भोजन किया करती थीं। बाबा उनकी अटल श्रद्धा की झाँकी का दूसरों को भी दर्शन कराना चाहते थे। एक दिन दोपहर को वे साँजा, पूरी, भात, सार, खीर और अन्य भोज्य पदार्थ लेकर मस्जिद में आईं।

और दिनों तो भोजन प्रायः घंटों तक बाबा की प्रतीक्षा में पड़ा रहता था, परन्तु उस दिन वे तुरंत ही उठे और भोजन के स्थान पर आकर आसन ग्रहण कर लिया और थाली पर से कपड़ा हटाकर उन्होंने रुचिपूर्वक भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। तब शामा कहने लगे कि, “यह पक्षपात क्यों? दूसरों की थालियों पर तो आप दृष्टि तक नहीं डालते, उल्टे उन्हें फेंक देते हैं, परन्तु आज इस भोजन को आप बड़ी उत्सुकता और रुचि से खा रहे हैं। आज इस बाई का भोजन आपको इतना स्वादिष्ट क्यों लगा? यह विषय तो हम लोगों के लिये एक समस्या बन गया है।” तब बाबा ने इस प्रकार समझाया -

“सचमुच ही इस भोजन में एक विचित्रता है। पूर्व जन्म में यह बाई एक व्यापारी की मोटी गाय थी, जो बहुत अधिक दूध देती थी। पशुयोनि त्यागकर इसने एक माली के कुटुम्ब में जन्म लिया। उस जन्म के उपरान्त फिर यह एक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई और इसका ब्याह एक व्यापारी से हो गया। दीर्घ काल के पश्चात् इनसे भेंट हुई है। इसलिये इनकी थाली में से प्रेमपूर्वक चार ग्रास तो खा लेने दो।” ऐसा कह कर बाबा ने भरपेट भोजन किया और फिर हाथ मुँह धोकर और तृप्ति की चार-पाँच डकारें लेकर वे अपने आसन पर पुनः आ विराजे। फिर श्रीमती खापर्डे ने बाबा को नमन किया और उनके पाद-सेवन करने लगी। बाबा उनसे वार्त्तालाप करने लगे और साथ-साथ उनके हाथ भी दबाने लगे। इस प्रकार परस्पर सेवा करते देखा शामा मुस्कराने लगा और बोला कि, “देखो तो, यह एक अद्भुत दृश्य है कि भगवान और भक्त एक दूसरे की सेवा कर रहे हैं।” उनकी सच्ची लगन देखकर

बाबा अत्यन्त कोमल तथा मृदु शब्दों में अपने श्रीमुख से कहने लगे कि अब सदैव “राजाराम, राजाराम” का जाप किया करो और यदि तुमने इसका अभ्यास क्रमबद्ध कर लिया तो तुम्हें अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी। तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होकर अत्यधिक लाभ होगा, आध्यात्मिक विषयों से अपरिचित व्यक्तियों के लिए यह घटना साधारण सी प्रतीत होगी परन्तु शास्त्रीय भाषा में यह ‘शक्तिपात’ के नाम से विदित है, अर्थात् गुरु द्वारा शिष्य में शक्तिसंचार करना। बाबा के वे शब्द कितने शक्तिशाली और प्रभावकारी थे जो एक क्षण में ही हृदय-कमल में प्रवेश कर गए और वहाँ अंकुरित हो उठे। यह घटना गुरु-शिष्य सम्बन्ध के आदर्श की द्योतक है। गुरु-शिष्य दोनों को एक दूसरे को अभिन्न जानकर प्रेम और सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उन दोनों में कोई भेद नहीं है। वे दोनों अभिन्न और एक ही हैं, जो कभी पृथक् नहीं हो सकते। शिष्य गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख रहा है, यह तो केवल बाह्य दृश्यमात्र है। आन्तरिक दृष्टि से दोनों अभिन्न और एक ही हैं तथा जो उनमें भेद समझता है, वह अभी अपरिपक्व और अपूर्ण ही है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।